ANCIENT INDIAN HISTORY & ARCHAEOLOGY, PATNA UNIVERSITY, PATNA

शुङ्ग कालीन मूर्तिकला की तकनीक एवं लक्षण

B.A. 2nd Year

Paper –III, Indian Art, Architecture and Archaeology

Dr. Manoj Kumar
Assistant Professor (Guest)
Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005
Email- dr.manojaihcbhu@gmail.com

PATNA UNIVERSITY, PATNA

शुंङ्ग कालीन मूर्तिकला की तकनीक एवं लक्षण

शुंङ्ग कालीन कलाकारों ने मूर्तिगत शैली के दृष्टिकोण से मौर्यों से पृथक परम्परा का अनुगमन किया। तत्युगीन मूर्तियाँ सम्मुख दर्शन में सफल हाने के कारण अपने पूर्ववत् मौर्यकला की चातुर्दर्शन अथवा त्रिदिशात्मक दर्शन से स्पष्टतया भिन्न थीं। भित्ति पर ये मूर्तियाँ इतना कम उभरीं हैं कि जैसे पाषाण खण्ड पर छेनी या छुरी से रेखाएँ खींची गई हों, जिन्हें दर्शक से ही देख सकता है। अतः राय की अवधारणा है कि ये नक्काशियाँ शर्मीलेपन विनम्रता एवम् झिझक की ही व्याख्या करती है। तत्युगीन कला में प्राकृतिक सहजता है, दृश्यों के अंकन में आडम्बर का अभाव है, स्त्री-पुरुष मूर्तियों में आदिवासियों की सरलता प्राप्त होती है, जो प्रकति से ही ओत-प्रोत है। वृक्ष, पशु एवं पक्षी भी स्वाभाविक मुद्राओं में चित्रित हैं। ये स्वयं कोई भावयक्त न करते हुए भी दर्शक को भावविभोर होने के लिए प्रेरित करते हैं ।

संकेत प्रधान शुंङ्ग कला सर्वत्र बौद्ध धर्म से सम्बन्धित तथ्यों से अंकित है। जातक कथाओं के दृश्य अंकित हैं किन्तु कहीं भी महात्मा बुद्ध की मूर्ति नहीं हैं। कलाकार ने महात्मा बुद्ध के उस आदेश का अनुपालन किया है जिसमें उन्होंने तथागत मूर्ति का निषेध किया है। इसीलिए वज्रासन, चरण चिह्न, चक्र, स्तूप, बोधिवृक्ष तथा हस्ति इत्यादि प्रतीकों से बुद्ध को प्रदर्शित किया है। यह ऐसी कला है जो दर्शक को वह कथा याद करने के लिए बाध्य करती है जिनसे ये प्रतीक सम्बद्ध हैं।

सौन्दर्य की दृष्टि से भी शुंङ्गकला सम्पन्न है । तरंगायमान रेखीय लेख इस कला की विशेषता है। विभिन्न चित्रों एवं कहानियों में ऐसा सामञ्जस्य है कि सभी एक दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं। जो पृथक चित्रण हैं, वे भी सार्थक पार्थक्य के साथ हैं, इसलिए कहीं भी असन्तुलन नहीं है। सम्पूर्ण रचना एक स्थान से प्रारम्भ होती है तथा शरनैः शनैः वह सम्पूर्ण वास्तुकृति को आवृत्त कर लेती है। जैसे सरोवर में कंकण फेंकने से लहरें तट तक स्पर्श करती हैं तथाकथित प्रसेनजित् के एक फलक में यह विशेषता पूर्ण प्रकट है। इससे चन्द्र, सुदर्शना, यक्षिणियों से विस्तृत वक्र रेखा

संगीत मण्डली, युवा नर्तकियों के साथ झूलती हुईं सम्पूर्ण दृश्य में अबाध गति से प्रवाहित होती है। पुरुष का सपाट पेट पीठ है तो स्त्री मूर्ति में उसके अंगों को उभाड़ने का भी प्रयास किया गया है। प्रकाश एवं छाया की अलग-व्यवस्था से सभी दृश्य सजीव हो गये हैं। मूर्तियों में एक दिव्य शान्ति, अनासक्त भाव, नैसर्गिक पवित्रता, गम्भीरता एवं विनम्रता प्राप्त होती है। जिससे मूर्तिकला में एक सहज आकर्षण उत्पन्न होता है।

तत्युगीन कला परिकल्पना एवं अभिव्यक्ति में भी अद्वितीय है। उसने जिस कथा का अंकन किया है, अपनी वर्णनात्मक शैली में उसका कोई पक्ष अछूता नहीं छोड़ा है। साँची, भरहुत तथा बोधगया की मूर्तियों ने एक भिन्न कला परम्परा का सृजन किया जिनसे परवर्ती मूर्तिकला को विकास का आयाम प्राप्त हुआ।

शुंगयुगीन मूर्तिकला के केन्द्र सम्पूर्ण भारतवर्ष में अवस्थित थे। उत्तर भारत में मथुरा, मध्य में साँची और भरहुत, उड़ीसा में उदयगिरि और खण्डगिरि, दक्षिण भारत में भाजा, अमरावती और नागार्जुनी कोण्डा उत्तर भारत से लेकिर दक्षिण भारत तक प्राप्त शुंगकालीन शिल्प में एकरूपता का दर्शन होता है; जिससे स्पष्ट होता है कि अपने सर्वदेशीय रूप में यह कला भारतीय कला की राष्ट्रीय छवि को लिये हुए है। इस कला के प्रमुखतया निम्नवत् लक्षण दृष्टिगत होते हैं-

(1) तत्युगीन मूर्तिकला तात्कालिक जन-जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है। भरहुत स्तूप में दो हजार वर्ष पूर्व के भारत के दैनिक जीवन का सजीव चित्रण है। लोगों के गृह, देवताओं की मूर्तियाँ, साधुओं के आश्रम तथा परिवहन-गाड़ियाँ, रथ, नौकायें, वेश-भाषा, शस्त्र तथा आभूषण जिनका प्रयोग साधारणतया किया जाता था। ये वस्तुएं नितान्त यथार्थवादी रूप में प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियाँ अत्यन्त सादगी एवं प्राणवता के साथ निर्मित की गई हैं जो तत्कालीन धार्मिक, भावनाओं एवं विश्वासों तथा शिष्टाचार सम्बन्धी व्यवहारों को अभिव्यक्त करती हैं। अस्तु जीवन के आनन्द तथा सुखों की भावना से परिव्याप्त उन मूर्ति-शिल्पों में हम भारत के जनसामान्य के मानस एवं आदतों के सम्बन्ध में एक अन्तर्दृष्टिप्राप्त करते हैं।

(2) तत्यूगीन मूर्तिकला का उद्देश्य जनता को महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं एवं बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराना था किन्तु उनके अवलोकन से आभासित होता है कि कलाकार का मूलोद्देश्य गौण हो गया और कलाकार जीवन का चित्रण करने में इतना संलग्न हो गया कि उसे जनता के नैतिक उन्नयन का कोई विशेष ध्यान न रह। डा० कुमारस्वामी की अवधारणा है कि इन चित्रों का प्रधान केन्द्र-बिन्दु न तो आध्यात्मिक है और न आचारवादी, बल्कि सम्पूर्णतया मानव जीवन से सम्बन्धित है।

(3) तत्युगीन मूर्तिकला में किञ्चित् प्रादेशिक विशेषताएं भी विकसित हुई, साथ ही वहाँ की संस्कृति ने क्षेत्रीय कलात्मक परम्पराओं को प्रभावित करते हुए मूलरूपेण एक ही कला-परम्परा की द्योतक बनी।

(4) तत्युगीन कलाकार अलंकरण-अनुरागी था क्योंकि वे तरह-तरह के अधिकाधिक विधान केवल सजावट के लिए प्रयुक्त किये। वृक्ष, वनस्पतियाँ, पशु एवं पक्षी, वेदिका तथा तोरण, स्तम्भों पर रूप संपुजन हेतु बहुतायत निर्मित किये गये हैं। इससे शिल्प का हस्तकौशल स्वतन्त्र प्रतीत होता है। फलक पर घटनाओं का दृश्य उकेरने के पश्चात रिक्त बचे हुए भाग को वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी आदि अभिप्रायों से सुसज्जित किया गया है, जिनका सम्बन्ध प्रदर्शित घटना-दृश्य से परे है।

(5) तत्युगीन मूर्तिकला में मूर्त-चित्रों की प्रधनता है। कला में ऐसी समस्याओं का संपुंजन हुआ है जिनका सम्बन्ध किसी न किसी कथानक अथवा घटना-विशेष से अवश्यमेव रहा है इस युग में मूर्तिकारों के समक्ष कुछ कठिनाइयाँ थीं, जैसे घटना के चित्रण में लघु एवं बड़ी मूर्तियों का अंकन, पार्श्वगत विशेषताओं का दिग्दर्शन और अन्धकर तथा प्रकाश का चित्रण आदि जो भारतीय कला में नहीं दिखाई गई थी। कारण कि पूर्ववर्ती मूर्तिकला घटना प्रधान एवं कथा प्रधान से वंचित रही। किन्तु इस काल में कला का प्रमुख विषय नाटकों में विवर्णित कथाएँ थीं जिनको मूर्त रूप देना एक कठिन कार्य था। इसके लिए कलाकारों ने नये-नये तरीके निकाले फिर भी इसमें उनको किञ्चित ही सफलता मिली।

(6) तत्युगीन मूर्तिकला में जातक कहानियों का समावेश होने से मूर्तिकला का प्रमुख विषय कला के बजाय कथा हो गया; साथ ही कहानी एवं घटना के वर्णन में उतना विस्तार हो गया कि एक ही इकाई के भीतर अनेक रूपों का चित्रण हुआ, जिससे मूर्तियाँ अत्यधिक सन्निकट हो गईं।

(7) मूर्तिकला में कथा या घटना को स्पष्ट करने हेतु प्रधान मूर्ति (कथा या घटना नायक) को बार-बार प्रदर्शित किया गया है और साथ-ही-साथ विभिन्न इकाईयों को एक में जोड़ने के लिए स्थान तथा अवसर विशेष को मूर्तियों में बार-बार प्रदर्शित किया गया है। वस्तुतः इसमें समय का ध्यान नहीं दिया गया है, जो भिन्न घटनाओं को पृथक् करते हैं अस्तु मूर्त चित्रों में काल-क्रम उपेक्षित सा है। कारण कि हम कला को देखकर घटित घटना के समय का अनुमान नहीं कर सकते। कलाकर के लिये अचल स्थान विशेष महत्त्व की वस्तु है, इससे कहानी समझने में अवश्य मदद मिलती है। लेकिन मूर्तियों को बार-बार दुहाराये जाने से वह दर्शक के लिए कला नहीं रह जाती है।

(8) तत्युगीन कला में पार्श्वगत विशेषताओं के प्रदर्शन में कलाकार सफल नहीं हो सके हैं। इसे उन्होंने अपने ढंग से दिखाने का प्रयत्न किया है उन्होंने रूपों की कल्पना मोटाई अथवा ऊँचाई में न करके धरातल रूप में की है। अतएवं मूर्ति चित्र में रूप या आकार एक दूसरे के पीछे नहीं वरन् एक दूसरे के ऊपर, दिखाये गये मालूम पड़ते हैं। अतः जो वस्तु अंशतः दिखाना चाहिए जैसा की हमें आंखों से दिखाई पड़ता है, उसे पूर्णरूपेण दिखाया गया है इसी प्रकार कथा में चित्रित दृश्य में जो पदार्थ निकट होने के कारण स्वभावतः बड़ा दिखाना चाहिए और जो पदार्थ दूरी से दिखायी पड़ने के कारण लघु रूप में दिखाया जाना चाहिए, वे स्वाभाविक रूप से नहीं दिखाये गये हैं, वे समान है। जो दृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्त के विरुद्ध हैं और वैज्ञानिक या वास्तविक कसौटी पर अप्राकृतिक हैं।

(9) तत्युगीन शिल्प के अन्दर मूर्तियों का निर्माण कथा के पात्र पर अवलम्बित है। इस तरह से पदार्थ अथवा वस्तुओं का दिखायी पड़ना दृष्टि पर आधारित न होकर घटना पर आधारित है। अतः कथा की आवश्यकतानुसार ही कलाकारों ने मूर्तियों

को गढ़ा है। अस्तु डॉ० सरस्वती का वक्तव्य ध्यातव्य है कि, शुंगकालीन मूर्ति चित्र एक ऐसे तश्तरी की तरह है जिसमें बहुत से रूप रख दिये गये हैं।

(10) तत्युगीन कला कल्पना परक प्रतीत होती है क्योंकि रूपों का यथार्थ चित्रण कुछ ही स्थानों पर मिलता है शिल्पकला के विषय कल्पना प्रसूत आकृतियाँ ही हैं, विशेषकर यक्ष और यक्षिणियों के रूप निर्देशन में आदर्श का अस्तित्व अधिक है। यक्ष-यक्षिणियों की मूर्तियों में प्रजनन अंगों पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। आकृतियों में अनेक ऐसे आभूषणों का प्रयोग है, जो केवल अलंकरण मात्र हैं और उनका मूर्ति-शास्त्र की दृष्टि से कोई स्थान नहीं है। परन्तु सौन्दर्य बोध की दृष्टि से वे विकासशील हैं।

(11) तत्युगीन शिल्प को देखने पर ज्ञात होता है कि कलाकर परिस्थितियों में बँधे हुए हैं, क्योंकि मूर्ति उकेरने का स्थान कम है और अपनी स्वतन्त्रता के अनुसार मूर्तियों को बड़ा बनाने में असमर्थ हैं। कारण कि इस काल की मूर्तियाँ स्तूपों के शिलाफलकों पर, दरवाजों के चौखटों पर, तोरण द्वारों पर या वेदिका युक्त फुललों पर निर्मित हुई हैं, जो एक छोटी सी इकाई हैं। फलतः दृश्यों में संकुचन का आभास होता है।

(12) शुंग कालीन मूर्तियों में चपटेपन का आभास होता है, ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्पकार काष्ठ, पर नक्काशी करने में कुशल थे और यहाँ पर इस कला का प्रयोग पाषाण में किया है। मूर्तियों को बहुत गहराई से न खोदने के कारण उनमें एक विशेष प्रकार का चपटापन परिलक्षित होता है। धीर-धीरे पाषाण उत्कीर्णन में दक्ष होने के साथ-साथ कलाकारों का हाथ सधता हुआ सा प्रतीत होता है, क्योंकि बाद की मूर्तियों को गहराई के साथ काटा गया है।

(13) शुंङ्ग कालीन कला विचार प्रधान है प्रायः जिस रूप में वस्तु दिखायी देती है, उस रूप में उसका निर्माण करके शिल्पियों द्वारा वस्तुओं का चित्रण मन में बनाये गये विचारों और धारणाओं के अनुसार किया गया है रोलैंड ने भरहुत पीन पयोधरा पृथु नितंबा निर्वसना यक्षिनियो के चित्रों का कारण भी विचारात्मक कला को बताया है।